

सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुधानाः।

विरोदसी अतपद्घोष एषां जाते 'निष्ठामदधुर्गोषु वीरान्॥ ऋक्संहिता ३/३१/१०

यह हमारा अपना आत्मवित्त है। इस 'स्व' भावना से दिव्यलोकस्थ गौओं पर दृष्टि डालते हुए अङ्गिरा महर्षियों ने अतिपुरातन रेत के प्रवर्ग्यरूप—दुग्ध का जब दोहन आरम्भ किया, तो इस दोहन कार्य से मानो ये गाएँ प्रसन्न हो पड़ी। इधर दुग्ध रस पान से प्रबल बने हुए अङ्गिरा महर्षियों का हर्षघोष रोदसी (त्रैलोक्य) में व्याप्त हो गया। अङ्गिराओं ने अपने इस गोदोहन कार्य के माध्यम से रोदसी त्रैलोक्य में उत्पन्न वस्तुमात्र में इसी गोदोहन कर्मात्मिका निष्ठा का आधान कर दिया। साथ ही दुग्ध सम्पन्न गायों में (गोदोहनकार्य—गोसंरक्षण कार्य के लिए) वीरों को निष्ठारूप से प्रतिष्ठित कर दिया।

मन्त्र के रहस्यार्थ की संक्षिप्त दिशा यही है कि जिस प्रकार पृथ्वी अग्निगर्भा है, उसी प्रकार द्युलोक इन्द्रगर्भित है। 'यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेणगर्भिणी' के अनुसार पृथिवी में आग्नेय अङ्गिराप्राण का प्राधान्य है एवं द्युलोक में ऐन्द्र आदित्यप्राण का प्राधान्य है। दोनों का परस्पर समन्वय पूर्वक गमनागमन होता रहता है। द्युलोक से आदित्यप्राण पृथिवी की ओर आते रहते हैं एवं पृथिवी लोक से अङ्गिराप्राण द्युलोक की ओर जाते रहते हैं, जैसा कि निम्नलिखित मन्त्रश्रुति से स्पष्ट है—

इत एत उदारूहन दिवस्पृष्ठान्यारूहन्।

प्र भूर्जयो यभापष्वी द्यामङ्गिरसो ययुः॥ सामसंहिता १/२/१

अङ्गिरा—आदित्य के इसी 'प्रहितां संयोगः' रूप गमन (अङ्गिराओं को) तथा 'प्रयुतां संयोगः' रूप आगमन (आदित्यों को) से ही सुप्रसिद्ध 'अङ्गिरसामयन' तथा 'आदित्यानामयन' नामक प्राकृतिक नित्ययज्ञ सञ्चालित रहते हैं। पृथिवी से द्युलोकपर्यन्त वाङ्मय वषट्कारात्मक सौररश्मिमण्डल तथा पार्थिव अग्निमण्डल व्याप्त है। ये प्राणात्मिका सहस्र रश्मियाँ ही 'गोतत्त्व' हैं जिन में त्रिवृत्—पञ्चदश—एकविंश—स्तोमभेद से क्रमशः अग्न्यनुबन्धी पार्थिव दधिरस, वाय्वनुबन्धी आन्तरिक्ष्य घृतरस, आदित्यानुबन्धी दिव्य मधुरस परिपूर्ण रहता है। इस रसत्रयी का मौलिक रस ही वह 'पय' (दुग्ध) है। जिसे 'सोम' कहा गया है। रोदसी त्रिलोकीरूपा पार्थिव त्रिलोकी में व्याप्त यह सोमात्मक पय वस्तुतः क्रन्दसीत्रिलोकी के पारमेष्ठ्य सोमरस का ही प्रवर्ग्य भाग है, जिसे पार्थिव रोदसी पय की अपेक्षा हम प्रत्नरस (पुरातन मौलिक रस) कह सकते हैं। पार्थिव अङ्गिराप्राणात्मक ऋषियों के 'एति च प्रेति चान्वाह' रूप व्यापार से ही नियमित व्यवस्थारूप से इस रस का दोहन होता रहता है एवं वीरभावात्मिका प्रजा इसी को आधार बना कर नियमित रूप से स्वसत्ता सुरक्षित रखने में समर्थ बनी रहती हैं। यह रसदोहनात्मक कार्य सृष्ट्यारम्भ से सृष्टि के अवसानपर्यन्त शाश्वतरूप से नियमतः प्रक्रान्त—व्यवस्थित बना रहेगा। इसी नियमित—व्यवस्थित—एकरसात्मक—व्यवस्थातन्त्र

के लिए ही मन्त्र में 'निष्ठामदधुः' वाक्य प्रयुक्त हुआ है। 'यथापूर्वं स्थितिमकार्षुः। इत्यादि रूप से सर्वश्री सायणाचार्य ने निष्ठा' शब्द के इसी व्यवस्थित स्थिर भाव का समर्थन किया है।

३. अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।

यूथे न निष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे॥

ऋक्संहिता ९/११०/९

“हे पवमान! (एतन्नामक सोम) जिस प्रकार एक सबल—स्वस्थ वृषभ (साण्ड) गायों के समूह में अधिष्ठातारूप से प्रतिष्ठित—निष्ठित रहता हुआ विचरण करता रहता है, उसी प्रकार आप इस द्यावापृथिवीरूप रोदसी त्रैलोक्य में व्याप्त सहस्ररश्मिरूप गोमण्डल में वृषभरूप से नियमतः स्थिर भाव से प्रतिष्ठित हैं।”

रोदसी त्रैलोक्य में व्याप्त स्थावर—जंगमात्मक भूतभौतिक प्रजावर्ग, साथ ही प्रजा के वसुधान—कोशात्मक (आवपनरूप आधारात्मक) द्यावापृथिवी, यह सभी कुछ एकमात्र 'पवमान' नामक उस पवित्र पारमेष्ठ्य सोम के आधार पर ही प्रतिष्ठित है, जो पवित्र ब्रह्मणस्पति नामक पारमेष्ठ्य सोम रोदसी त्रैलोक्य तथा तत् प्रजा के आधारभूत सहस्रगो—रश्मि—रूप सूर्य में निरन्तर व्यवस्थित रूप से आहुत होता रहता है। इसी सोमाहुति से 'सूर्यो ह वा अग्निहोत्रम्' (शत०) इत्यादिरूप से उपवर्णित नित्य प्राकृतिक अग्निहोत्र व्यवस्थित रहता है। सोमाहुति से ही सौरयज्ञ, सौररश्मि गोतत्त्व, सौरमण्डलभुक्त प्रजावर्ग ओषधि वनस्पतियां सब कुछ स्वस्वरूप से व्यवस्थित है। त्रैलोक्य में सर्वत्र पवमान—पावक—शुचिभेद से त्रैलोक्य भावापन्न पारमेष्ठ्य सोम ही 'निष्ठा' रूप से प्रतिष्ठित है। जैसा कि अन्य मन्त्रश्रुति से भी स्पष्ट है—

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।

त्वमाततन्धोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थं॥ ऋक्संहिता १/१४/२२

गोयूथ में नायक रूप से प्रतिष्ठित समर्थ पौरुषयुक्त वृषभ के साथ मन्त्रश्रुति ने पवमान सोम की तुलना की है। स्पष्ट है कि यहाँ भी 'निष्ठा' शब्द व्यवस्थित पौरुषयुक्त स्थिरधर्म का ही संग्राहक बना हुआ है। वैसे अविचाली भाव का संग्राहक बना हुआ है निष्ठा शब्द, जिसकी सत्ता में अन्य सापेक्ष स्थिर चर भाव संचालित रहते हैं।

उक्त तीनों ऋद्धमन्त्रों में नितरां स्थितिलक्षण जिस अविचाली स्थिरभाव के लिए 'निष्ठा' शब्द प्रयुक्त हुआ है। उसी अर्थ में ब्राह्मणारण्यकोपनिषच्छ्रुतियों में 'निष्ठा' शब्द व्यवहृत हुआ है, जैसा कि अधोनिर्दिष्ट कतिपय ब्राह्मणादि वचनों से प्रमाणित है—

४. अथास्यै बिलमभिपद्यते—'अदितिष्टे बिलंगृभ्णातु' इति। वाग्वा अदितिः।

एतद्वाऽनां देवाः कृत्वा वाचादित्यानिरष्ठापयन्'। तथैवैनामेतत् कृत्वा वाचादित्या
'निष्ठापयति'।

शतपथब्रा. ६/५/२/२०

५. "स यामिच्छेत्—कामयेत मेति, तस्यामर्थं 'निष्ठाय', मुखेन मुखं संधाय,

उपस्थमस्या अभिमृश्य जपेत्—

'अङ्गादङ्गात् सम्भवसि, हृदयादधिजायसे।

स त्वमङ्गकषायोऽसि विदग्धविद्धामिव मादये माममूं मयीति"॥

बृहदारण्यकोपनिषत् ६/४/९

६. "यदा वै निस्तिष्ठति—अथ श्रद्धधाति। नानिस्तिष्ठन् श्रद्धधाति।

निस्तिष्ठन्नेव श्रद्धधाति निष्ठात्वेव विजिज्ञासितव्या॥"

छान्दोग्योपनिषद् ७/२०

'सत्यस्य सत्यम्' लक्षण आत्मदेवता के सहजविकास—स्वरूपबोध—के लिए जो उपाय उपनिषदों में निर्दिष्ट हुए हैं, उन्हें ही—'सत्योपायनहेतवः' कहा गया है। सत्यभावात्मक निष्ठालक्षण चाक्षुषपुरुषाधिष्ठाता ज्योतिगौरायुर्लक्षण विश्वमध्यस्थ सूर्य के प्रवर्ग्य भाग से कृतरूपा बुद्धि ही सत्यात्मप्राप्ति में अन्यतम सहायक मानी गई है। इस विज्ञानप्राणात्मिका सौरी सत्यबुद्धि की अवान्तर सप्तावस्थारूपा सप्तभूमिकाओं से ही आत्मसत्य का साक्षात्कार हुआ करता है। शास्त्रीयज्ञाननिष्ठा प्रामाण्यबुद्धि आप्तबुद्धि है; इसे ही 'विज्ञानबुद्धि'^१ माना गया है। यही पहला सत्यसाक्षात्कारोपाय है। जन्मान्तरीय पवित्र संस्कारों से समन्विता सांस्कारिकी सहजबुद्धि दूसरी बुद्धि है, जिसे मनन धर्मकी अपेक्षा से 'मतिबुद्धि' भी कहा गया है। मानसप्राणानुगता स्नेहगुणान्विता सोममयी प्रज्ञा से समन्विता बुद्धि तीसरी बुद्धि है, जिसे 'श्रद्धाबुद्धि' माना गया है। पाषाणशिलासमतुलित दृढ़भावात्मक निश्चितभाव से समन्विता बुद्धि चौथी है, जिसे 'निष्ठाबुद्धि' माना गया है। पौरुषकर्मानुगता क्रियाशीलबुद्धि पाँचवीं बुद्धि है जिसे 'कृतिबुद्धि' कहा गया है। कर्मफलानुगामिनी फलसंस्कारसमन्विता बुद्धि छठी बुद्धि है, जिसे 'सुखबुद्धि' माना गया है एवं आत्मभावानुगता प्रसादगुणोपेता शान्तिलक्षणा तृप्ता बुद्धि सातवीं बुद्धि है, जिसे 'भूमाबुद्धि' माना गया है। इस प्रकार शास्त्रप्रामाण्य जन्मान्तरीय संस्कार सौम्यप्रज्ञा, दृढ़निश्चय, कर्मानुगति, फलानुगति, सहजतृप्त्यानुगति इन सात धर्मों से सौरी बुद्धि के ही क्रमशः विज्ञानबुद्धि मतिबुद्धि, श्रद्धाबुद्धि, निष्ठाबुद्धि, कृतिबुद्धि उक्त निगम प्रमाणों के आधार पर प्रतिष्ठित आगम प्रमाणों के द्वारा भी निष्ठा शब्द के मूलभूत दृष्टिकोण का ही समर्थन हुआ है, जिनमें से कतिपय आगमोदाहरण यहाँ उद्धृत कर देना अप्रासङ्गिक न माना जायेगा—

सुखबुद्धि, भूमाबुद्धि— ये सात ही महिमात्मक विभिन्न विवर्त हो जाते हैं। जिन सातों विवर्तों का तत्प्रकरण में छान्दोग्यविज्ञानभाष्य में विशद वैज्ञानिक विवेचन हुआ है। आत्मसत्यसाक्षात् करने वाले भाग्यशाली पुरुषश्रेष्ठ को इन्हीं सात सत्योपायों की जिज्ञासा मनन—अनुगमन करते रहना चाहिए। इन सातों बुद्धिविवर्तों का केन्द्र चौथी 'निष्ठाबुद्धि' ही बनी हुई है। जिसकी सत्ता से ही शेष छहों प्रकार सफल हो सकते हैं। अतएव 'निष्ठा' को ही बुद्धि की अन्यतमविकासभूमि माना गया है। निम्नलिखित तालिका से सातों विवर्तों का भलीभाँति समन्वय हो जाता है—

सत्यात्मोपायनहेतवः—

१. शब्दशास्त्रात्मिका—प्रामाण्यबुद्धिः—विज्ञानबुद्धिः (विज्ञानम्) — विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्या।
२. संस्कारानुगता—सहजबुद्धिः— मतिबुद्धिः (मतिः) — मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्यम्।
३. प्रज्ञानुगता— स्नेहबुद्धिः— श्रद्धाबुद्धिः (श्रद्धा) — श्रद्धात्वेव विजिज्ञासितव्या।
४. पर्वतसदृशा— दृढबुद्धिः — निष्ठाबुद्धिः (निष्ठा) — निष्ठात्वेव विजिज्ञासितव्या।
५. कर्मानुगता— क्रियाबुद्धिः — कृतिबुद्धिः (कृतिः) — कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्या।
६. फलानुगता— तुष्टबुद्धिः— सुखबुद्धिः (सुखम्) — सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यम्।
७. शान्त्यनुगता— तृप्तबुद्धिः— भूमाबुद्धिः (भूमा) — भूमात्वेव विजिज्ञासितव्या।

—स्वयं प्रादुर्भूत—स्वयं निःश्वासरूपेण विनिर्गत अपौरुषेयनित्य वेदशास्त्र ही 'निगम' कहलाया है। इस निगमशास्त्र को मूल मानकर प्रवृत्त होने वाला, निगमप्रामाण्य से प्रमाणित रहने वाला अन्य समस्त वाङ्मय प्रपञ्च 'आगम' कहलाया है। स्वयं निर्गतः— निगमः, निगमादागतः—आगमः, ही निगमागमशब्दों के निर्वचन है। वेदातिरिक्त सम्पूर्ण इतर शास्त्र—इतिहास—पुराण—स्मृति—आदि इस निर्वचन के अनुसार 'आगम' अभिधा से व्यवहृत हो सकते हैं, हुए हैं।

७. लोकेऽस्मिन् द्विविधा 'निष्ठा' पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां, कर्मयोगेन योगिनाम्॥ गीता ३/३

८. ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।

तेषां 'निष्ठा' तु का कृष्ण! सत्त्वमाहो रजस्तमः॥ गीता १७/१

९. सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।

'स्मार्त्ती उपनिषत्' लक्षणा श्रीमद्भगवद्गीता में उक्त तीन स्थलों में 'निष्ठा' शब्द प्रयुक्त हुआ है। आगमशास्त्रों में जिस रूप से 'निष्ठा' शब्द की घोषणा गीताशास्त्र में हुई है, वैसी अन्यत्र अनुपलब्ध है। वस्तु स्थिति तो वास्तव में यह है कि 'निष्ठा' तत्त्व का वास्तविक रहस्यार्थ तो राजर्षिविद्या नाम के माध्यम से अन्यतरूपेण गीताशास्त्र में ही सुव्यक्त हुआ है। गीताशास्त्राभिव्यक्ति से पूर्व (महाभारतयुग से पूर्व) भी निष्ठापथ प्रचलित अवश्य था। किन्तु हिरण्यगर्भऋषि से सम्बद्ध कर्मात्मक योग एवं कपिल से सम्बद्ध ज्ञानात्मक सांख्य, इन दो विभिन्न पथों में निष्ठातत्त्व विभक्त हो रहा था। हिरण्यगर्भपथानुगामी यज्ञकर्माभिनिविष्ट कर्मासक्तविद्वानों की दृष्टि में उस युग में एकमात्र प्रवृत्ति प्रधान कर्म ही अभ्युदय—निःश्रेयस का निश्चित पथ था। अतएव ये इस कर्मात्मिका योगनिष्ठा के ही अनन्य समर्थक बने हुए थे। दूसरी ओर कपिलपथानुगामी ज्ञानाभिनिविष्ट ज्ञानासक्तविद्वान् एकमात्र कर्मत्यागलक्षण ज्ञान को ही निःश्रेयस का अन्यतम साधन घोषित कर रहे थे। यही इनकी सुप्रसिद्धा ज्ञाननिष्ठा, अथवा सांख्यनिष्ठा थी। 'लोकऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा' (गी.३/३) इत्यादि रूप से तद्युगानुरूप सर्वथा विभिन्नभावात्मिका इन्हीं दोनों निष्ठाओं का सङ्केत हुआ है।

'निष्ठा' पथ में द्वैधीभाव का अभाव है। निष्ठापथ एक ही हो सकता है और वही 'बुद्धियोगनिष्ठा' रूप से सर्वप्रथम गीताशास्त्र में उपदिष्ट हुआ है। भगवान् वासुदेव कृष्ण ने ही—'एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति, स पश्यति' (गीता ५/५) इत्यादि रूप से कर्म और ज्ञान, दोनों के समन्वय से निष्पन्न उस बुद्धियोगात्मिका एक निष्ठा का स्पष्टीकरण किया है। जिसका प्रथम अनुवर्त्मा बना है इन्द्रावतार अर्जुन। शास्त्रसिद्ध विधि विधान पूर्वक स्व वर्णाश्रमोचित कर्तव्यकर्म का यावज्जीवन बुद्धियोग पूर्वक अनुगमन करते रहना ही वास्तविक 'निष्ठा' है। यही वह निर्द्वन्द्व निश्चित—राजपथ है, जिसके अनुगमन से मानव अपना ऐहिक—आमुष्मिक अभ्युदय निःश्रेयस संसिद्ध कर लेता है। इसी शास्त्रीय नैगमिक निष्ठापथ के सम्बन्ध में अर्जुन को आगे चलकर जो आशङ्का हुई है, 'ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य.' (गीता. १७/१) इत्यादि रूप से उसी का स्वरूप विश्लेषण हुआ है। स्वयं शास्त्रविधि को न जानने से, अथवा जानते हुए भी देश—काल—द्रव्य—श्रद्धा के तारतम्य से सम्बन्ध रखने वाली युगधर्मपरिस्थिति के तात्कालिक प्रभाव से जो व्यक्ति केवल गतानुगतिकरूप से देव—पितृ—अतिथि—यजनादिरूप सत्कर्मों में श्रद्धापूर्वक योगदान करते रहते हैं, उन की इस लौकिक निष्ठा का क्या स्वरूप है? यही इस आशङ्का सूत्र का अक्षरार्थ है। जिसका भगवान् ने श्रद्धाभेद से विस्तार से समन्वय किया है।

नवोदाहरण में उपात्त 'निष्ठा' शब्द ज्ञान की परानिष्ठा का उपक्रम हुआ है। साध्यावस्थापन्ना निष्ठा 'बुद्धियोगनिष्ठा' है एवं सिद्धावस्थापन्ना निष्ठा 'ज्ञाननिष्ठा' है। आरुरुक्षु मानव की निष्ठा 'बुद्धिनिष्ठा' कहलाई है एवं आरूढमानव की वही संसिद्धा निष्ठा 'ज्ञाननिष्ठा' कहलाई है इसी ज्ञानात्मिका सिद्धावस्था परा निष्ठा

के द्वारा ब्रह्मसम्पत्ति का सर्वात्मना अनुग्रह हुआ करता है। जिस ज्ञाननिष्ठा का आगे के समाधान वाक्यों से यही निष्कर्षार्थ घोषित हुआ है कि—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।

‘बुद्धियोग’ मुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ गीता १८/५७

उक्त तीनों गीतावचनों में प्रयुक्त ‘निष्ठा’ शब्द का ऋजुतात्पर्य एकमात्र नियमित स्थितिभाव ही है। ‘नितरां स्थितिः’ लक्षण निर्वचन ही तीनों स्थानों में निर्विरोध समन्वित हो रहा है, जैसा कि व्याख्याताओं के तत्स्थलों के— ‘नियमेन स्थितिव्यवस्था प्रोक्ता कृतेत्यर्थः’— ‘प्रवृत्तानां पुरुषाणां निष्ठा—स्थितिः का किं लक्षणा’ ‘या परा निरतिशयपरिपाकलक्षणा निष्ठा—परिसमाप्तिः—विकारविनिर्मुक्ता निश्चला स्थितिः’ इत्यादि वाक्यसन्दर्भों से स्पष्ट प्रमाणित है।